आर० एस० नायक

बनाम

ए० आर० अंतुले

(R. S. Nayak

v.

A. R. Antulay)

तथा

पी० एस० सामंत

बनाम

ए० आर० अंतुले

(P. S. Samant

v.

A. R. Antulay)

(5 अप्रैल, 1984)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, आर० एस० पाठक, ओ० चिनप्पा रेड्डी, ए० पी० सेन और वी० बालकृष्ण एराडी)

दंड विधि संशोधन अधिनियम, 1952 (1952 का 46)—धारा 8 (1)—उक्त धारा के अधीन अपराध का संज्ञान—उच्चतम न्यायालय द्वारा मामलों को उच्च न्यायालय को सौंपे जाने का निदेश दिया जाना—उच्च न्यायालय में विचारण में पीठासीन न्यायाधीश द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में प्रश्न उठाया जाना—पीठासीन न्यायाधीश मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट मामलों के विचारण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का अनुसरण करेगा और विचारण पर उस प्रक्रम से आगे कार्यवाही की जाएगी जहां से अभियुक्त को उन्मोचित किया गया था।

दंड विधि संशोधन अधिनियम, 1952 (1952 का 46)—धारा 8 (3)—अपराध का संज्ञान—उच्चतम न्यायालय द्वारा मामलों को उच्च न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश द्वारा विचारण किए जाने का निदेश दिया जाना—उच्च न्यायालय में अभियोजन के प्रभारी के बारे में प्रश्न उठाया जाना—परिवादी द्वारा अभियोजन का संचालन करने के लिए नियोजित अधिवक्ता लोक अभियोजक समझा जाएगा।

दो पूर्व निर्णयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के अनुसरण में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति ने दोनों मामलों को जो कि विशेष न्यायाधीश से वापस ले लिए गए थे, उच्च न्यायालय के एक पीठासीन न्यायमूर्ति को सौंप दिए। जब मामला सुनवाई के लिए लाया गया तो दोनों मामलों के विचारण में न्यायमूर्ति द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के प्रश्नों पर प्रस्तुत प्रकीर्ण पिटीशनों के द्वारा इस बात के स्पष्टीकरण की मांग की गई कि अभियोजन का प्रभारी कौन होगा। उच्चतम न्यायालय द्वारा निदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—यदि दांडिक पुनरीक्षण आवेदन वापस लेकर उच्चतम न्यायालय को न दिया जाता तो उच्च न्यायालय दांडिक पुनरीक्षण आवेदन की सुनवाई करते समय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 407 के अधीन विशेष मामले को अंतरित कर देता जिससे कि दांडिक पुनरीक्षण आवेदन उद्भूत हुआ था और ऐसी स्थिति में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 407 (8) के अधीन उच्च न्यायालय को उसी प्रक्रिया का अनुसरण करना होता है जिसका अनुसरण विशेष न्यायाधीश के न्यायालय ने किया था, यदि मामला अंतरित न होता। यह बात विवादास्पद नहीं है कि विद्वान् विशेष न्यायाधीश से विचारण करते समय मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट मामलों के विचारण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण करने की अपेक्षा थी और इस मामले के तथ्यों में प्रक्रिया पुलिस रिपोर्ट से भिन्न अन्यथा संस्थित मामलों के संबंध में थी। विचारण उस प्रक्रम से आगे बढ़ना था जब कि अभियुक्त को उन्मुक्त कर दिया गया था। अतः यह बात स्पष्ट है कि इसके लिए किसी और स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। विद्वान् न्यायाधीश को अपने समक्ष लंबित दोनों मामलों में विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 19 ख में सम्मिलित धारा 244 से 247 (दोनों सम्मिलित हैं) में विहित प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा। इस बात का विनिश्चय करना परिवादी का कार्य है कि अभियोजन के लिए उसका

विद्वान् प्रभारी अधिवक्ता कौन होगा, और दोनों मामलों के विचारण को राज्य द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक को व्यस्त करने का कोई प्रश्न नहीं है। (पैरा 3 और 8)

1983 की दांडिक अपील सं० 247 में दिए गए निर्णय के साथ पठित प्रथम प्रश्न के संबंध में स्पष्टीकरण से, जिसमें दंड विधि संशोधन अधिनियम, 1952 की धारा 8 (3) का निर्वचन किया गया था, उप-सिद्धांत के रूप में यह पता चलता है कि यदि दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 की धारा 8 (1) के अधीन अपराध का संज्ञान किया जाता है और विचारण उस में विहित प्रक्रिया के अनुसार किया जाता है तो धारा 8 (3) के अधीन परिवादी द्वारा अभियोजन करने के लिए नियोजित विद्वान् अधिवक्ता को लोक अभियोजक समझा जाएगा। ऐसी स्थिति में राज्य के लिए अभियोजन का संचालन करने के लिए लोक अभियोजक नियुक्त करने का प्रश्न नहीं उठता। इसलिए यह बात स्पष्ट है, जो कुछ हद तक उपरोक्त निर्णय के दृष्टिकोण से समानार्थक दिखाई देती है, कि इस बात का विनिश्चय करना परिवादी का कार्य है कि अभियोजन का प्रभारी विद्वान अधिवक्ता कौन होगा और इस प्रकार नियुक्त अधिवक्ता लोक अभियोजक समझा जाएगा। (पैरा 4)

दांडिक अधिकारिता : 1984 का दांडिक प्रकीर्ण पिटीशन सं० 1740 :

1983 की दांडिक अपील सं० 356 में निदेशों के लिए।

और

1984 का दांडिक प्रकीर्ण पिटीशन सं० 2217.

1983 की दांडिक अपील सं० 356 में निदेशों के लिए।

पिटीशनर की ओर से	श्री राम जेठमलानी, कुमारी रानी जेठमलानी, सर्वश्री नरेश जेठमलानी और जे० वाड
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री ए० के० सेन, एम० एन० श्रॉफ और दलवीर भंडारी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया।

न्यायाधिपति देसाई—

1983 की दांडिक अपील सं० 356 और 1983 के अन्तरित मामला सं० 348 के साथ 1983 के अन्तरित मामला सं० 347 के मामले में दिए

गए निर्णय में 16 फरवरी, 1984 को इस न्यायालय की सांविधानिक न्याय-पीठ द्वारा किए गए आदेश के परिणामस्वरूप बृहतर मुम्बई के विशेष न्यायाधीश श्री आर० बी० सुले के न्यायालय में लंबित 1982 का विशेष मामला सं० 24 और 1983 का विशेष मामला सं० 3 वापस ले लिए गए थे और वे मुम्बई उच्च न्यायालय को अंतरित हो गए। उसी निर्णय में दिए गए निदेश के अनुपालन में मुम्बई उच्च न्यायालय के विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने दोनों मामले उच्च न्यायालय के पीठासीन न्यायमूर्ति एस० एन० खत्री को सौंप दिए थे। विद्वान् न्यायमूर्ति ने 12 मार्च, 1984 को अपने समक्ष दोनों पक्षकारों को बुलाया। जब सुनवाई के लिए मामले पर कार्यवाही की जा रही थी तो अभियुक्त की ओर से कतिपय प्रारम्भिक आक्षेप उठाए गए जिनके बारे में हमें बताया गया है कि उन पर माननीय न्यायमूर्ति ने 16 मार्च, 1984 के अपने आदेश में चर्चा की है। दो विवाद्यकों के संबंध में आगे विचार स्थगित कर दिया गया था। ये विवाद्यक दो मामलों के विचारण में विद्वान् न्यायमूर्ति द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के प्रश्न पर उठे थे कि अभियोजन का प्रभारी किसे होना चाहिए। हमारी राय में यदि इस न्यायालय के निर्णय को ध्यानपूर्वक और बारीकी से पढ़ा गया होता तो ये दो प्रश्न मुश्किल से उठ पाते। तथापि, दो प्रकीर्ण पिटीशन निर्णय के स्पष्टीकरण के लिए इस न्यायालय में समावेदित किए गए जिससे कि मामलों के विचारण में देरी को रोका जा सके।

2. निर्णय का प्रवर्तनशील भाग जो उठाए गए प्रश्न के संबंध में है, निम्न प्रकार है—

> "इसलिए बृहतर मुम्बई के विशेष न्यायाधीश श्री आर० बी० सुले के न्यायालय में लंबित 1984 का विशेष मामला सं० 24 और 1983 का विशेष मामला सं० 3 वापस लिए जाते हैं और विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति से इस अनुरोध के साथ मुम्बई उच्च न्यायालय को अंतरित किए जाते हैं कि वे इन दोनों मामलों को उच्च न्यायालय के पीठासीन न्यायमूर्ति को सौंप दें।"

निर्णय के पूर्वान्तिम पैरा में अपील को मंजूर करते हुए इस न्यायालय ने निम्न प्रकार निदेश दिए थे—

> "तदनुसार यह अपील सफल होती है और मंजूर की जाती है। 25 जुलाई, 1983 के विद्वान् विशेष न्यायाधीश श्री आर० बी० सुले का आदेश और विनिश्चय, जिसमें 1982 के विशेष मामले सं० 24

और 1983 के विशेष मामले सं० 3 में अभियुक्त को उन्मुक्त कर दिया था को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और अब विचारण उस प्रक्रम से आगे चलेगा जहां से अभियुक्त को उन्मुक्त किया गया था।''

3. दोनों निदेशों को साथ-साथ पढ़ने से यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि विद्वान् न्यायाधीश को अध्याय 19 ख में विहित प्रक्रिया के अनुसार अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 244 से 247 में विहित प्रक्रिया के अनुसार, विचारण करना होगा। संक्षेप में विद्वान् न्यायाधीश को मामले का विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस रिपोर्ट से भिन्न अन्यथा संस्थित मामलों के लिए विहित प्रक्रिया के अनुसार करना होगा। स्थिति इस तथ्य के दृष्टिकोण से साफ और स्पष्ट है कि यह न्यायालय अपील मंजूर करते समय अन्य बातों के साथ-साथ विद्वान् न्यायाधीश श्री आर० बी० सुले के आदेश के विरुद्ध मुम्बई उच्च न्यायालय की फाइल पर 1983 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं० 354 होने के कारण 1983 का अंतरित मामला सं० 347 की सुनवाई कर रहा था जिसमें अभियुक्त को उन्मुक्त किया था। यदि दांडिक पुनरीक्षण आवेदन वापस लेकर इस न्यायालय को न दिया जाता तो उच्च न्यायालय दांडिक पुनरीक्षण आवेदन की सुनवाई करते समय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 407 के अधीन विशेष मामले को अंतरित कर देता जिससे कि दांडिक पुनरीक्षण आवेदन उद्भूत हुआ था और ऐसी स्थिति में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 407 (8) के अधीन उच्च न्यायालय को उसी प्रक्रिया का अनुसरण करना होता है जिसका अनुसरण विशेष न्यायाधीश के न्यायालय ने किया था, यदि मामला अंतरित न होता। यह बात विवादास्पद नहीं है कि विद्वान् विशेष न्यायाधीश से विचारण करते समय मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट मामलों के विचारण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण करने की अपेक्षा थी और इस मामले के तथ्यों में प्रक्रिया पुलिस रिपोर्ट से भिन्न अन्यथा संस्थित मामलों के संबंध में था। विचारण उस प्रक्रम से आगे बढ़ना था जबकि अभियुक्त को उन्मुक्त कर दिया गया था। हमारी राय में यह बात स्पष्ट है और इसके लिए किसी और स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। 16 फरवरी, 1984 को विनिश्चित 1983 की दांडिक अपील सं० 247 में इस न्यायालय द्वारा यथा-निर्वचित 1952 के दांडिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 8 (1) इस स्थिति को स्पष्ट और काफी साफ कर देती है।

4. 1983 की दांडिक अपील सं० 247 में दिए गए निर्णय के साथ पठित प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण से जिसमें दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 की धारा 8 (3) का निर्वचन किया गया था, उप-सिद्धांत के रूप में यह पता चलता है कि यदि दंड विधि संशोधन अधिनियम, 1952 की धारा 8 (1) के अधीन अपराध का संज्ञान किया जाता है और विचारण उसमें विहित प्रक्रिया के अनुसार किया जाता है, तो धारा 8 (3) के अधीन परिवादी द्वारा अभियोजन करने के लिए नियोजित विद्वान् अधिवक्ता को लोक अभियोजक समझा जाएगा। ऐसी स्थिति में राज्य के लिए अभियोजन का संचालन करने के लिए लोक अभियोजक नियुक्त करने का प्रश्न नहीं उठता इसलिए यह बात स्पष्ट है जो कुछ हद तक उपरोक्त निर्णय के दृष्टि-कोण के समानार्थक दिखाई देती है कि इस बात का विनिश्चय करना परि-वादी का कार्य है कि अभियोजन का प्रभारी विद्वान् अधिवक्ता कौन होगा और इस प्रकार नियुक्त अधिवक्ता लोक अभियोजक समझा जाएगा।

5. डाक्टर सिंघवी ने जो प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से हाजिर हुए यह दलील दी कि स्पष्टीकरण के लिए पिटीशन के रूप में उपरोक्त दो प्रश्नों पर विनिश्चय का पूर्वानुमान करने या उन्हें तय करने का यह गूढ़ प्रयत्न है जो विद्वान् न्यायाधीश के समक्ष लम्बित हैं जिसके समक्ष दोनों मामले लम्बित हैं। नए सिरे से उपरोक्त दोनों प्रश्नों को विनिश्चित करने का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि उनके बारे में उत्तर ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों में स्पष्ट हैं। डाक्टर सिंघवी ने उस समय कुछ नहीं कहा जब कि उन्हें ऐसे स्पष्टीकरण के बारे में न्यायालय ने आमंत्रित किया जो न्यायालय उपरोक्त दोनों प्रश्नों के सम्बन्ध में देता है। उन्होंने हमें यह बात स्पष्ट कर दी कि वे उपरोक्त दोनों प्रश्नों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण के प्रश्न पर कोई दलील नहीं देना चाहते।

6. हमने देखा कि महाराष्ट्र सरकार, श्री ए० के० सेन और श्री एम० एन० श्राफ के माध्यम से हमारे समक्ष हाजिर हुई किन्तु उन्होंने कोई दलील नहीं दी।

7. परिवादी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री जेठमलानी यह चाहते थे कि न्यायालय प्रकीर्ण पिटीशन में सं० (ग) और (घ) में निवेदनों पर विचार करे जिन्हें हम प्रकीर्ण पिटीशनों के निपटान के लिए विचार करने हेतु असंगत समझते हैं और हम इन पिटीशनों में उन पर चर्चा करना नहीं चाहते।

8. संक्षेप में स्पष्टीकरण यह है कि विद्वान् न्यायाधीश को अपने समक्ष

लम्बित दो मामलों में विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 19 ख में सम्मिलित धारा 244 से 247 (दोनों सम्मिलित हैं) में विहित प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा। इस बात का विनिश्चय करना परिवादी का कार्य है कि अभियोजन के लिए उसका विद्वान् प्रभारी अधिवक्ता कौन होगा, और इन दोनों मामलों के विचारण को राज्य द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक को न्यस्त करने का कोई प्रश्न नहीं है।

तदनुसार निदेश दिया गया।

स०